The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 11 | November 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

मीडिया में दलित मुद्दे : एक अध्ययन

डॉ. संजीव कुमार
सहायक प्राध्यापक, श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, भिलाई.दुर्ग छ.ग.490020
ssanjeevmzp@gmail.com

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Keywords:
दलित, मुद्दे , संकीर्णता ,बाजारवाद , असमानता .

DOI:
10.5281/zenodo.14328652

ABSTRACT

आज शायद ही कोई ऐसा हो जो मीडिया से परिचित न हो। पहले मिशन, फिर प्रोफेशन और आज बाजारवाद के समक्ष निर्लज्ज खड़ी है हमारी मीडिया । इन सब के बीच भारतीय मीडिया पर अक्सर मनुवादी मानसिकता का आरोप लगता रहा है । व्यवसाय में तब्दील मीडिया पर जातिवाद, भाईभतीजावाद आदि के आरोप भी लगते रहे हैं । कई सर्वेक्षण - रिपोर्ट्स ने इसका खुलासा भी किया है । दलित हिस्सेदारी एवं दलित सरोकारों की अनदेखी सहित अन्य मुद्दों को मीडिया में जगह नहीं मिलती है ।[1] मीडिया दलितों के सवालों और उनके मुद्दों से अपना मुँह फेरता रहता है, साथ ही दलित आंदोलनों को भी मीडिया तरजीह नहीं देता है। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी दलित वर्ग मीडिया से लगभग गायब है। मीडिया दलितों के साथ होने वाले अत्याचार उत्पीड़न को या तो पूरे चटखारेदार बना कर और सनसनी पैदा करके किसी खास राजनीतिक दल के फायदे के लिये उसे उछालता है या फिर महज़ रस्म अदायगी के तहत समाचार पत्र के कोने में कोई जगह दे देता है । चैनल जब बाध्य हो जाते हैं तो फटाफट समाचारों में दोचार बार स्टिप चला देते हैं। मीडिया घरानों पर ऊंचें पदों पर - सवर्ण ही आसीन हैं और उन्होंने ऐसा चक्रव्यूह रच रखा है कि किसी दलित का या तो वहां पहुँच पाना ही असंभव होता है और अगर किसी तरह वे पहुँच भी गया तो, उनका टिक पाना मुश्किल है।

आज दलित समाज की मूल समस्याओं पर लिखने के लिए कोई मीडिया नहीं है साफ .है कि समाज के अंदर दूरदराज के इलाकों में - घटने वाली दलित उत्पीड़न की घटनाएं, धीरेधीरे मीडिया के पटल से गायब होती जा रही है । एक दौर था जब रविवार-, दिनमान, जनमत आदि जैसी प्रगतिशिल पत्रिकाओं में रिपोर्ट आ जाती थी। खासकर, बिहार व उत्तर प्रदेश में दलितों पर हुए अत्यचार को खबर बनाया जाता था । बिहार के वरिष्ठ पत्रकार श्रीकांत की दलित उत्पीड़न से जुड़ी कई रिपोर्ट उस दौर में छप चुकी हैं, वे मानते हैं कि 'आज मुख्यधारा की

[1] सुमन, हंसराज. (2009). मीडिया और दलित. दिल्ली: श्री नटराज प्रकाशन- पृष्ठ-24

मीडिया, दलित आंदोलन से जुड़ी चीजों को नहीं के बराबर जगह देती है। पत्र पत्रिकाएं कवर स्टोरी नहीं-बनाते हैं। जबकि घटनाएं होती ही रहती हैं। हालांकि, एककभार दलित मुद्दों को जगह देते दिख जाते हैं।-पत्रिकाएं हैं जो कभी-आध पत्र-'[2]

आज हालात यह है कि मीडिया की दृष्टिकोण में तथाकथित उच्चवर्ग फोकस में रहता है। कैमरे का फोकस दलित टोलों पर नहीं टिकता । टिकता है तो हाई प्रोफाइल पर। बात साफ है जो बिके उसे बेचो? [3]अब खबर पत्रकार नहीं तय करता है बल्कि, मालिक और विज्ञापन तथा सरकुलेशन प्रमुख तय करते हैं । वे ही तय करते हैं कि क्या बिकता है और क्या बेचा जाना चाहिए । जाहिर-सी बात है 'दलित आंदोलन' बिक नहीं सकता ?

साठ-सत्तर के दशक में दलितों, अछूतों और आदिवासियों, दबे-कुचलों की चर्चाएं मीडिया में हुआ करती थी। दलित व जनपक्षीय मुद्दों को उठाने वाले पत्रकारों को वामपंथी या समाजवादी के नजरिए से देखा जाता था। लेकिन, सत्तर के दशक में गरीबी, महंगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों ने राष्ट्रीय मीडिया को बदलाव में धकेलना शुरू कर दिया । सच है, दबे-कुचले लोगों के उपर दबंगो के जुल्म-सितम की खबरें, बस ऐसे आती है जैसे हवा का एक झोंका हो । जिसका असर मात्र क्षणिक भी नहीं होता।[4] साठ-सत्तर के दौर में ऐसा नहीं था । सामाजिक गैर बराबरी को जिस तेवर के साथ उठाया जाता था उसका असर देर सबेर राजनीतिक, सामाजिक और सत्ता के गलियारे में गूंजता रहता था । दलित आंदोलन पर मीडिया की दृष्टिकोण के सवाल पर बंगाल के वरिष्ठ पत्रकार पलास विश्वास कहते हैं, मीडिया दलितों से जुड़ें मुद्दों को नहीं के बराबर छापती है । हकीकत यह है कि मीडिया द्वारा दलित आंदोलन को नजरअंदाज किया जाता है । ऐसा वे जानबूझ कर करते हैं ताकि मुख्यधारा से दलित आंदोलन जुड़ न सके यह एक बहुत बड़ा कारण है। मीडिया उन्हीं दलित मुद्दों को छापती है जिससे उन्हें खतरा महसूस नहीं होता [5]और जो भी कुछ छापता है उसे अपने हिसाब से छापती है । दलित मार खाए तो चर्चा ,दलित के यहाँ कोई बड़ा नेता भोजन करे तो खबर और दलित रोजगार मांगे ,बेघर फिरे ,सरकारे उनका हक खाएं तो इसकी कही कोई जिक्र नहीं । मीडिया में दलित जीवन संघर्ष नहीं के बराबर दिखता है। वहीं गैर दलितों के मुद्दों को बखूबी जगह दी जाती है ।

<u>हिंदी समाचार पत्रों में जातिगत लेख आकडे प्रतिशत में</u> (तालिका) [6]

दी गयी तालिका में 5.7% अनुसूचित जाति के लोग अमर उजाला में जाति की समस्याओ पर लिखते है जबकि इन मुद्दों पर सवर्ण समाज के 62.6% लोग लेख लिखते है | पंजाब केसरी और राजस्थान पत्रिका में स्थिति थोड़ी बेहतर है , इन पत्रों में 11% से ज्यादा दलित समाज के लोग जाति की समस्याओं पर लिखते है | कुल प्रतिशत देखा जाय तो जाति की समस्याओं पर देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में 60.3 लोग सवर्ण समाज के लोग लेख लिखते है और मात्र 8.3 % दलित ही जाति के मुद्दों पर लिखते है |[7] यहाँ पिछड़ी जातियों की भी स्थिति भी असंतुष्ट करने वाली है क्योकि देश की आधी जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य वे महज 10% ही जाति की समस्याओं पर लिख पा रहे है ,

---

[2] सिंह, डॉ .अनामिका प्रकाशन :नयी दिल्ली .समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में दलित उवाच .(2007) .श्योराज .

[3] सुमन, हंसराज. (2009). मीडिया और दलित. दिल्ली: श्री नटराज प्रकाशन.वही

[4] गौतम, रूपचन्द. (2009). दिल्ली की दलित पत्रकारिता. नयी दिल्ली: श्री नटराज प्रकाशन-पृष्ठ-42

[5] परिहार, कलुराम.अनामिका प्रकाशन :नयी दिल्ली .मीडिया के सामाजिक सरोकार .(2008) .

[6] . https://www.forwardpress.in/2019/09/indian-media-cast-oxfam-india-and-newslaundry-hindi/रिपोर्ट

[7] . https://www.forwardpress.in/2019/09/indian-media-cast-oxfam-india-and-newslaundry-hindi/

चुकि पिछड़ी जाति के लोग भी जातिभेद – भाव का डंस झेल रहे है परन्तु दलितों से सामाजिक एंव आर्थिक स्थिति से कहीं ज्यादा सुदृढ़ होने के बावजूद उनकी संख्या इतनी कम चिंताजनक है |

समाचार पत्र	**सवर्ण जाति**	**अनुसूचित जाति**	**अनुसूचित जनजाति**	**पिछड़ी जाति**	**सूचना उपलब्ध नही**	**कह नही सकते**
अमर उजाला	%62.6	%5.7	%0.5	%10.5	%6.1	%14.6
दैनिक भाष्कर	%68.2	% 7.4	%0.3	%10.6	%3.1	%10.4
हिंदुस्तान	%61.1	% 6.7	%1.4	%7.4	%3.9	%19.6
नवभारत टाइम्स	%68	% 5.4	%0.2	%9.8	6.3	10.2
प्रभात खबर	%59.5	%7.8	%2.8	%11.2	%6.8	%11.8
पंजाब केसरी	%49.8	%11.8	%0.3	%12.1	% 9.6	% 16.4
राजस्थान पत्रिका	%66.5	%11.9	%1.9	%9.2	%2.4	%8.2
कुल %	%60.3	%8.3	%0.9	%10.1	%6.3	%14.1

फारवर्ड प्रेस ने 2019 में इस विषय पर व्यापक अध्ययन कर प्रस्तुत किया था उसके कुछ भाग यहाँ प्रस्तुत है -

चर्चित दलित पत्रकार-साहित्यकार मोहनदास नैमिश राय मानते हैं कि,'भारत की सवर्ण मीडिया आरंभ से ही बेईमान और दोगले चरित्र की रही है । उसकी कथनी और करनी में अंतर है। सच तो यह है कि पिछले एक दशक से वे दलित सवालों को अपने हित के लिए उछालने में लगे हैं। ऐसा करते हुए वे दलित सवालों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं, बल्कि दलितों को राजनीतिज्ञों की तरह रिझाते हैं। वह मार्केट तलाश करते रहे हैं, जो उन्हें मिल भी रहा है । दलित समाज के बुद्धिजीवियों को कम-से-कम यह समझना चाहिए। उन्हें अपने स्वतन्त्र मीडिया की स्थापना कर उसका विकास करना चाहिए।'

साहित्यकार और स्तंभकार जयप्रकाश वाल्मीकि कहते थे , राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर के समाचार-पत्र राजनीति, अपराध समाचारों, आदि से भरे रहते हैं। रविवारीय पृष्ठों में भी दलित सवालों और रचनाओं को कोई स्थान नहीं मिल रहा । साहित्य के नाम पर सवर्णों के साक्षात्कार, कहानियां, कविताएं ही आती हैं । इनके रविवारी, परिशिष्टों में बहुत से स्थानों पर ज्योतिष, वास्तुशास्त्र तथा स्वास्थ्य चर्चाएं ही होती हैं। कुल मिलाकर मीडिया में दलित विमर्श गायब है।

सबसे ज्यादा उपेक्षित और पीड़ित शोषित वर्ग है। आजादी के कई वर्षों बाद भी देश की एक चैथाई जनसंख्या दलितों की है और इनकी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है । अत्याचार की घटनाएं बढ़ ही रही है । कहने के लिये कानूनी तौर पर कई कानून हैं।

फिर भी घटनाएं घट रही हैं और वे घटनाएं मीडिया में उचित स्थान नहीं पा पातीक्योंकि मीडिया ,, पूजीपतियों की गोद में खेल रही है । गणेष शंकर विद्यार्थी ने अखबार 'प्रताप'में लिखा था कि,पत्रकारिता को अमीरों की सलाहकार और गरीबों क" ी मददगार होनी चाहिए"।

विकसित किए जाने पर बहुत जोर दिया था जो आज अम्बेडकर ने दलित और दबे कुचले वर्ग के अपने खुद के मीडिया को .डॉ भी अपूर्ण उद्देश्य है । उनका मानना था कि अपना स्वयं का मीडिया हम सबको अपने ही समाज को जागरूक बनाने और उसे संगठित करने के लिये अति आवश्यक है। दलितों का अपना मीडिया हम सबके और हमारे समाजों के बीच एक संवाद और हमारे एकीकरण की प्रक्रिया का माध्यम होगा। जो जातिवाद के खिलाफ और समानता के आन्दोलन के लिये हम सबका संवाद माध्यम बनेगा।[8] लेकिन यदि हमें मुख्यधारा के समाजों से जाति के मुद्दे या जातिविहीन समाज के लिये संवाद करना होगा तो उसके लिये मुख्यधारा के मीडिया को ही संवाद का माध्यम बनाना होगा और उसे संवेदनशील बनाना होगा।

सीएनएन-आईआबीएन-7 के वरीष्ठ समाचार संपादक आकाश, दलितों की भारतीय मीडिया में उपेक्षा के प्रश्न पर कहते हैं- "आरक्षण की सहायता से कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका में दलित तो आए परन्तु आज भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के चौथे खंभे में दलितों की संख्या नगण्य है" इस कथन के समर्थन में कई आंकड़े भी हैं जो इसकी पुष्टि करते हैं। सच है कि जनमत के निर्माण में पत्रकारिता की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। इसके बावजूद मीडिया जनपक्षी मुद्दों को लगातार नहीं उठाती। जहां तक दलित मुद्दों के पक्ष में जनमत निर्माण की बात है, तो मीडिया इसे छूने से कतराती है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि मीडिया संस्थानों से दलितों का कम जुड़ाव का होना। मीडिया आज के समय में किसी भी राष्ट्र के विकास का मुख्य माध्यम बन गया है। मीडिया राष्ट्र के विकास से जुड़े मुद्दों को जनता और राष्ट्र चलाने वाले अधिकारियों और नेताओं के सामने रखता है। मीडिया में जो भी मुद्दे होते हैं वो पूरे देश के लोगों का भी मुद्दा बन जाता है। हमारे समाज में दलित आज भी पिछड़े हुए हैं और यह जरूरी है की देश के विकास के लिए दलितों का भी विकास हो। दलितों का विकास तभी संभव है जब मीडिया में दलित मुद्दों को जगह दी जाए और उन पर चर्चाएँ हो, और दलित समाज की समस्याओं के समाधान खोजे जाएँ। मीडिया में दलितों से जुड़े मुद्दों को अगर जगह मिलती है तो नेताओं और अधिकारियों के साथ-साथ देश की जनता का भी ध्यान इस तरफ होगा।

कथाकारआलोचक रामयतन यादव कहते हैं-, मुख्य धारा की मीडिया में दलित आंदोलन को जगह नहीं मिली है। बड़े पत्रकार इस मुद्दे पर नहीं लिखते हैं। इसके पीछे वर्चस्व का खतरा है। मुख्य धारा की मीडिया पर काबिज लोग नहीं चाहते कि उनके वर्चस्व पर आक्षेप आए। यह सब सामाजिक चिंतन के तहत होता है। इसके तहत दलित आंदोलन धारा को आगे बढ़ने नहीं देना चाहते हैं। समाज का बड़ा तबका दलित पिछड़ों का है। इनके आंदोलन को मीडिया-तरजीह नहीं देती है। मसला आरक्षण का हो या फिर शोषणउत्पीड़न का - मीडिया में जगह मात्र साहनुभूति के तहत दी जाती है । कभी भी उसके पीछे के तत्त्वों को ढूंढने की कोशिश मीडिया नहीं करती है। क्योंकि वह जातीय लबादे से बाहर निकल नहीं पाई है।

निष्कर्ष – डॉ.आंबेडकर ने जिस दौर में पत्रकारिता की शुरुआत की उस दौर में गाँधी ,तिलक ,मालवीय की स्वतंत्रता क्रांति एंव सांस्कृतिक विरासत की पत्रकारिता की जा रही थी ऐसे में दलित समाज पूर्णतः उपेक्षित जीवन जी रहा था उनके लिए कोई लिखने वाला नहीं था .डॉ आंबेडकर लन्दन से पढ़े – लिखे थे पत्रकारिता की ताकत उन्हें भलीभांति ज्ञात था.उन्होंने यूरोप इत्यादि से शिक्षा प्राप्त कर यह समझ लिया था की सभी गैर दलित भारतीयों ने विश्व में भारत की छवि एक अत्यंत उदार और सहिष्णु देश के तौर पर प्रस्तुत किया था

[8] गौतम, रूपचन्द. (2009). दिल्ली की दलित पत्रकारिता. श्री नटराज प्रकाशन-पृष्ठ 65

.दलितों की स्थिति तथा गैरदलित लोगों की मनोस्थिति से दुनिया अनभिज्ञ थी .डॉ आंबेडकर ने इसी पूरी धारणा को बदलने के लिए '**मूकनायक**' को अपना माध्यम बनाया .

उनके इसी पत्रकारीय सोच ने उन्हें दलितों का चहेता बनाया परिणामस्वरूप उनको गोलमेज सम्मलेन में दलितों की वास्तविक स्थिति से दुनिया को परिचय कराने का अवसर प्राप्त हुआ और देश में दलितों के हक की बात ने जोर पकड़ ली . आज भी देश में डॉ आंबेडकर को सिर्फ राजनितिक ,सामाजिक ,कानून एंव आर्थिक विद्वान ही मानता है पर उनके जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों में से पत्रकारिता भी रहा है यह बहुत कम लोग जानते है .अगर सभी दलित उनके इस पत्रकारीय जीवन को समझ लें तथा पत्रकारिता की शक्ति को जान ले तो अनेक समस्याओं का सामना वे स्वयं कर सकते है .

संदर्भ

1. मंडलोई, लीलाधर.आधार प्रकाशन :पंचकूला .इनसाइड लाइव .(2006) .
2. सुमन, हंसराज .श्री नटराज प्रकाशन :दिल्ली .मीडिया और दलित .(2009) .
3. गौतम, रूपचन्द.श्री नटराज प्रकाशन :नयी दिल्ली .दिल्ली की दलित पत्रकारिता .(2009) .
4. सिंह, डॉगौतम .श्योराज ., एस .गौतम बूक सेंटर :दिल्ली .मीडिया और दलित .(2009) .एस .
5. सिंह, डॉ .अनामिका प्रकाशन :नयी दिल्ली .समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में दलित उवाच .(2007) .श्योराज .
6. परिहार, कलुराम.अनामिका प्रकाशन :नयी दिल्ली .मीडिया के सामाजिक सरोकार .(2008) .

- http://mohallalive।com/2013/02/12/dalits-in-media-sanjay-kumar/
- http://hindi।maeeshat।in/?p=416
- http://naukarshahi।in/archives/13436
- http://rahul-madhangarh।blogspot।in/2013/09/blog-post_4315।html
- http://mediapanchayat।blogspot।in/2014/08/blog-post।html
- http://www।urjanchaltiger।in/2012/08/where-are-dalit-in-media।html
- http://www।bbc।co।uk/hindi/india/2014/01/140107_dalit_camera_ra